

## वैदिक कालीन भारत में महिलाओं की वैवाहिक स्थिति

डॉ. राज बहादुर यादव\*

कन्या का विवाह वैदिक कालीन समाज में एक पुण्य कृत्य माना गया है और उनका विवाह परिपक्वावस्था में होने का प्रमाण वैदिक ग्रंथों में प्राप्त होता है। कन्या अपने पति के चुनाव के लिए पूर्णतः स्वतंत्र थी। ऋग्वेद और अथर्ववेद में ऐसी कन्याओं का उल्लेख है जो पत्नी की इच्छा करने वाले युवक के पास, पति की इच्छा से स्वयं जाती है।<sup>1</sup> इसे स्पष्टतः गन्धर्व विवाह का रूप माना जा सकता है। ऋग्वैदिक कालीन विवाहों से स्पष्ट है कि इस समय माता-पिता अपनी पुत्रियों के लिए उपयुक्त वर नहीं खोजते थे। कन्याएँ स्वयं अपने लिए वर ढूँढती थीं<sup>2</sup> राक्षस या क्षात्र विवाह का भी एक उदाहरण हमें ऋग्वेद में मिलता है। विमर्द ने युद्ध में अपनी पत्नी को पाया।<sup>3</sup> असुर विवाह का भी उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। जिसमें वर धन देकर कन्या से विवाह करता था। किन्तु इस काल में भी इस प्रकार के विवाह को प्रशंसनीय नहीं समझा जाता था।<sup>4</sup> जब कन्या में कुछ शारीरिक दोष होता था तो पिता दहेज देकर उसका विवाह करता था।<sup>5</sup> इस युग में दहेज का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके अनुसार कुछ धनी व्यक्ति भी अपनी पुत्रियों के विवाह में दहेज देते थे। अथर्ववेद में एक ऐसा आख्यान है जिसके अनुसार एक पिता अपनी पुत्री के विवाह में वर को एक सौ गाय दहेज में दिया।<sup>6</sup> प्रायः कन्या का विवाह बड़ी उम्र में होता था जो बाल-विवाह के अस्तित्ववान नहीं होने का प्रमाण है।<sup>7</sup> शतपथ ब्राह्मण के अनुसार बिना पत्नी के मनुष्य अपूर्ण रहता है। उसके बिना यज्ञ भी अपूर्ण समझा जाता था।<sup>8</sup> ऐतरेय ब्राह्मण में पत्नी को मित्र कहा गया है<sup>9</sup> पति-पत्नी में विरोध इसलिए नहीं होता था कि दोनों के विचार समान होते थे।<sup>10</sup> पत्नी स्वयं परिवार के सभी कार्यों की देखभाल करती थी।<sup>11</sup> वृद्ध सास, श्वसुर, देवर, ननद सभी पर उसका नियंत्रण रहता था पत्नियों गुरुजनों का आदर करती थीं।<sup>12</sup>

वस्तुतः ऋग्वेद में विवाह के प्रकारों का स्पष्ट उल्लेख से तो प्राप्त नहीं होता, किन्तु विवाह की प्रकृति के अन्वेषण से विवाह के निम्न प्रकार अनुमानित होते हैं— ऋग्वेद में कन्या के पिता को 'वर' द्वारा धन देकर विवाह करने का उल्लेख 'आसुर' विवाह का निदर्शन माना जा सकता<sup>13</sup> है, पति-पत्नी का कभी भी विच्छेद न हो स्पष्टतः 'प्राजापत्य विवाह' का संकेत<sup>14</sup> अर्थात् दोनों संयुक्त रूप से परिवार

के कर्तव्यों की पूर्ति करें<sup>15</sup> कन्या द्वारा अपने पति का स्वयं चुनाव स्वयंवर प्रथा का निदर्शन है,<sup>16</sup> पूर्व में उल्लिखित 'विमर्द' की कथा से इस प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है,<sup>17</sup> ऋग्वेद में वर और कन्या का स्वयं अपनी इच्छा से विवाह करने का उल्लेख मिलता है। जो स्पष्टतः गन्धर्व विवाह का प्रमाण माना जा सकता है<sup>18</sup>। इसके अतिरिक्त संविदा की शर्तों की पूर्ति न हो तो विवाह विच्छेद संभव था।

गृह्यसूत्रों से एक ही प्रकार के विवाह का निदर्शन होता है, जिसको कोई विशिष्ट नाम नहीं दिया गया था। यद्यपि मानवगृह्यसूत्र जो बाद की रचना है उसमें 'ब्रह्म' और 'शौल्क' दो प्रकार के विवाहों का वर्णन है। केवल आश्वलायनगृह्यसूत्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है<sup>19</sup> इसमें ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्रजापत्य समाज में अच्छे समझे जाते थे, इसलिए इनको 'धर्म्य' या न्यायसंगत कहा गया है, शेष चार प्रकारों गन्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच को 'अधर्म्य' या अनुचित कहा गया है।

ऋग्वेद में पारंपरिक दांपत्य निष्ठा पर बल दिया गया है।<sup>20</sup> अथर्ववेद में भी दांपत्य प्रेम की स्थिरता की हार्दिक कामना की गयी है। एक पत्नीत्व के इस आदर्श के होते हुए भी एक ही समय में एक से अधिक पत्नियों का भी उल्लेख वैदिक काल में राजाओं के संदर्भ में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में राजा की दो पत्नियों महिषी और परिवृक्ति का उल्लेख है।<sup>21</sup> अथर्ववेद में पुरुषों की एक से अधिक स्त्रियों का स्पष्ट उल्लेख है। इसमें एक स्त्री के जादू करने का वर्णन मिलता है जिससे कि वह सपत्नी से पीछा छुड़ा सके।<sup>22</sup>

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि सूर्या का विवाह उस समय हुआ था, जब वह पति को प्राप्त करने हेतु इच्छुक थी<sup>23</sup> विवाह से पूर्व युवती युवक से स्वतंत्रतापूर्वक मिल सकती थी।<sup>24</sup> उस समय अविवाहित रह जाना कन्या के लिए लज्जास्पद नहीं था।<sup>25</sup>

विवाह की संस्था के पर्याप्त समादर एवं समुचित नियमन के बिना परिवार का विशद् एवं समरस अस्तित्व सम्भव ही नहीं था<sup>26</sup> परन्तु प्रचलित एक पत्नीत्व ही रहा होगा। वैदिक आर्यों में बहुपत्नित्व<sup>27</sup> व्यवस्था के स्पष्ट प्रमाण संबंधी दावों के बावजूद<sup>28</sup> ऐसा मानने का कोई औचित्य नहीं दिखायी देता।<sup>29</sup> सदाचार का निर्वाह ऊँचे स्तरों तक होता था। युवक-युवतियों को जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। पिता-पुत्री एवं भाई-बहन के बीच वैवाहिक संबंध को मान्यता नहीं थी,<sup>30</sup> और सम्भवतः भाइयों की संतानों के मध्य भी वैवाहिक सम्बन्ध अभिहित नहीं था।<sup>31</sup> बाल-विवाह उस समय प्रचलित नहीं था। हालाँकि कालान्तर में इसका प्रचलन हो गया था।<sup>32</sup> ऋग्वेद में कम से कम दो जगहों पर वर-वधू के लिए 'अर्भ' शब्द व्यवहृत है।<sup>33</sup> परन्तु यदि इस उल्लेख को सन्दर्भों से जोड़कर देखें तो 'अर्भव' अपने प्रतिद्वन्दी को परास्त कर जीवन साथी चुनता है या वरण करता है। किसी बालक से ऐसी उम्मीद करना कुछ अतिरिक्त की ही चाह रखना है।<sup>34</sup>

कभी-कभी शादी के लिए यदि युवकों को स्त्री मूल्य देना पड़ता था,<sup>35</sup> तो शारीरिक रूप से अक्षम कन्याओं के विवाह के लिए वर को भी धन दिया जाता था।<sup>36</sup> दहेज प्रथा के प्रारम्भिक चिन्ह यहाँ खोजे जा सकते हैं। ऋग्वेद का एक सूक्त जिसे विवाह सूक्त<sup>37</sup> कहा जाता है, वैवाहिक कर्मकाण्डों पर ही प्रकाश डालता है। नव-दम्पति के सुखमय जीवन की कामना की गयी है।<sup>38</sup> नव विवाहिता अपने पति गृह में जिस तरह सम्मान की अधिकारिणी बनती है इसकी चर्चा भी 'साम्राज्ञी'<sup>39</sup> के प्रतीक के माध्यम से की गयी है। इसी सूक्त में यह भी ज्ञात होता है कि विधिवत् सम्पन्न विवाह में विच्छेद की संभावना नहीं रहती थी। विधवा विवाह अप्रचलित था यद्यपि पति के भाई (देवर) के साथ विधवा के विवाह का एक प्रसंग पाया जाता है।<sup>40</sup>

एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे वर्ग में भी विवाह कर सकता था<sup>41</sup> अंगिरस के प्रसिद्ध ऋषिकुल में 'असंग' नामक एक राजा का विवाह हुआ था<sup>42</sup>। कक्षीवान् नामक ऋषि ने राजा रचनय की कन्याओं से विवाह किया था<sup>43</sup>। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे एक मर्यादा प्रिय समाज की स्वतंत्रता का बोध होता है।

इस संदर्भ में एक बहुत ही गंभीर प्रश्न यह उभर कर सामने आता है कि ऋग्वैदिक परिवारों के पितृसत्तात्मक होने की बात उस समय के समाज के जन जातीय संगठन के कहीं प्रतिकूल तो नहीं ठहरती? पितृ शब्द का मूलतः सामूहिक पितरों के रूप में अर्थबोध तथा माता एवं पिता से सम्बंधित रक्त सम्बन्धों की अलग-अलग संज्ञाओं का न होना कही मातृ सत्ता के अवशेषों के प्रतीक तो नहीं<sup>44</sup>। ब्राह्मण एवं उपनिषदों में उल्लिखित वैदिक ऋषियों में से 36 नाम भी मातृ नामन्त है। तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक समाज एवं परिवार के संदर्भों में मातृ सत्ता के सशक्त दखल को नकारा नहीं जा सकता।<sup>45</sup>

पर्दा-प्रथा का कोई चिन्ह भी तत्कालीन समाज में दिखायी नहीं देता<sup>46</sup>। विवाह सूक्त में<sup>47</sup> वधू से यह अपेक्षा की गई है कि वह सार्वजनिक सभाओं में अपनी वक्तृता के प्रकाश से चमक उठेगी। स्त्रियों के 'सती' होने का साक्ष्य तो नहीं मिलता, हों एक संकेत अवश्य है,<sup>48</sup> परन्तु उसमें भी उसे चिता पर से उतरने को ही कहा गया है। कुछ मंत्रों को आधार बनाकर हम विधवा पुर्नविवाह का अभिद्योतन मान सकते हैं<sup>49</sup>। वैदिक युगीन समाज में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान था। स्त्री तथा पुरुष समान रूप से घर के प्रति उत्तरदायी माने गये और उनके लिए 'दम्पति' शब्द व्यहृत है। ऋग्वेद में 'वीर', 'प्रसविनी' पत्नी की प्राप्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना एवं उपासना की जाती थी<sup>50</sup> यद्यपि स्त्री पति के अधीन होती थी, तथापि घर पर उसी का आधिपत्य होता था। वह गृहस्थ जीवन की प्रमुख अंग तथा प्रसन्नता का स्रोत थी<sup>51</sup>। पति के साथ मिलकर वह सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों का निर्वाह करती थी। यज्ञ में वह पति के साथ रहती थी, समय-समय पर वह स्वयं भी यज्ञ

सम्पन्न करती थी। पत्नी रहित व्यक्ति यज्ञोपधान नहीं कर सकता था।<sup>52</sup> वेदों में माता की प्रतिष्ठासूचक उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वह पिता से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।<sup>53</sup> उसकी प्रतिष्ठा एवं गरिमा ऐसी थी कि वह व्यवहार में सर्वदा 'पिता' शब्द से पहले व्यवहृत होती रही है। सन्तान का जन्म, भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा उसी के द्वारा होता रहा। वैदिक युग की प्रसिद्ध समिति विदथ थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में 122 तथा अथर्ववेद में 22 बार किया गया है। श्री के०पी० जायसवाल का मानना है कि 'विदथ' तथा 'समिति' वैदिक युग की अन्य प्रसिद्ध समितियों से भिन्न थी। इस भिन्नता का कारण 'विदथ' में नारी सदस्यों का समावेश था<sup>54</sup> ऋग्वेद में केवल एक ही ऐसा निर्देश मिलता है, जहाँ नारी का प्रवेश 'सभा' में दिखाया गया है।<sup>55</sup> विदथ के लिए सात ऐसे निर्देश दिये गये हैं जिनके अनुसार नारी न केवल इसमें प्रवेश की अधिकारिणी थी, अपितु 'विदथ' की प्रक्रिया तथा वाद-विवाद में भी भाग लेती थी। तात्पर्य यह है कि ऋग्वैदिक नारी उत्तरवर्ती नारियों की अपेक्षा अधिक अधिकारों से लैस थी और एक वस्तु बनने से अभी तक बची रह सकी थी।

उत्तरवैदिक काल में विवाह के संदर्भ में प्रो० जी०एस०पी० मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि "तत्कालीन आर्थिक आवश्यकताओं तथा धार्मिक मान्यताओं के संदर्भ में विवाह संस्था का विशेष महत्व था।<sup>56</sup> उसी समय तीन ऋणों की अवधारणा प्रकाश में आती है<sup>57</sup> और विवाह के द्वारा पुत्रोत्पत्ति एक अनिवार्य कृत्य बन जाता है। क्योंकि पितृऋण से उऋण होने के लिए संतान आवश्यक थी। यज्ञ कर्म के सम्पादन एवं संतान की इच्छा, विवाह का प्रमुख प्रेरक रही। बिना पत्नी के पुरुष अधूरा समझा जाता था<sup>58</sup> एवं यज्ञ की आहुतियाँ देने का अधिकारी नहीं रह जाता था।<sup>59</sup> ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित है कि एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ तो हो सकती हैं, परन्तु एक स्त्री के अनेक पति नहीं।<sup>60</sup> इसके दृष्टांत भी कई मिलते हैं, जैसे याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थी<sup>61</sup>। तैत्तिरीय ब्राह्मण में बहुपत्नीत्व को शुभ माना गया है<sup>62</sup>, परन्तु बहुपतिकता का निषेध,<sup>63</sup> क्या उसके अस्तित्व का प्रमाण माना जा सकता है? पति के लिए बहुवचन के प्रयोग के आधार पर एक प्रयास हुआ है 'बहुपतिकता' को सिद्ध करने का।<sup>64</sup> माताओं के नाम पर पुत्रों के संबोधन करने का भी एक तर्क दिया गया कि पिता की सही जानकारी के अभाव में माता के नाम पर पुत्र का नाम रखा गया।<sup>65</sup> परन्तु सम्मान एवं विद्वता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के अभिद्योतन स्वरूप ऐसा किया जाता रहा होगा। अन्तर्वर्णी विवाह भी अस्तित्व में थे। छांदोग्य उपनिषद में शूद्र जानश्रुति का, एक ब्राह्मण को कन्यादान,<sup>66</sup> शूद्र राजा द्वारा ब्राह्मण को कन्यादान का संदर्भ, पंचविश ब्राह्मण में वत्स का प्रकरण इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त है। विवाह में 'गोत्र' की भूमिका पर स्पष्टतया कुछ कहा नहीं जा सकता।

कन्या का जन्म क्रमशः उत्तर वैदिक युग में दुःखद माना जाने लगा था। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित है, "पत्नी एक साथी है, पुत्री एक विपत्ति है, पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है"।<sup>67</sup> ब्राह्मण काल में पुत्र प्राप्ति को धार्मिक महत्व दिया जाने लगा। ऋण मुक्ति के सिद्धांत के पुत्र प्राप्ति के पितृऋण से मुक्त होने के लिए धार्मिक दृष्टि से आवश्यक बना दिया गया। मुक्ति हेतु पुत्र की अभिलाषा इतनी तीव्र होती गयी कि उसकी प्राप्ति हेतु विशेष धार्मिक कृत्य किये जाने लगे और यह बात भुला दी गयी कि इससे कन्या जाति का अस्तित्व ही मिट जायेगा। मैत्रायणी एवं काठक-संहिता में ऐसे धार्मिक कृत्यों का वर्णन है, जिसमें पुत्र को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। किन्तु कन्या नितांत उपेक्षित भी नहीं थी<sup>68</sup>। पुत्र जन्म को अधिक महत्व देना सम्पत्ति वृद्धि से भी जोड़ा जा सकता है। जिस प्रकार अर्थव्यवस्था ने सामाजिक संरचना को (वर्णव्यवस्था) प्रभावित किया, उसी प्रकार पुत्र प्राप्ति की लालसा को भी प्रभावित किया होगा। जैसे-जैसे व्यक्तिगत सम्पत्ति का विस्तार हुआ होगा वैसे ही वैसे सम्पत्ति की सुरक्षा की सामाजिक लालसा ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पुत्र प्राप्ति की मनोवृत्ति को प्रभावित किया होगा।

ब्राह्मण ग्रंथों के रचनाकाल में भी पत्नी को अर्द्धांगिनी कहा गया है, किन्तु पत्नियाँ अब धार्मिक कृत्य स्वयं नहीं करती थी और न ही राजनीतिक सभाओं में भाग लेती थी। इस काल में स्त्रियों का जुए और शराब के साथ वर्गीकृत किया जाना उसकी निम्न स्थिति का द्योतक है,<sup>69</sup> उन्हें पति के बाद भोजन ग्रहण करने का विधान मिलता है<sup>70</sup>। उस स्त्री को अच्छा समझा जाता था जो पति को प्रत्युत्तर नहीं देती थी।<sup>71</sup> कहने का आश्रय यह कि विवेच्य काल में भी नारियों से कुछ अतिरिक्त की ही चाह रखने की भावना का निदर्शन यहाँ दिखता है।

महाकाव्यों में विवाह को महत्वपूर्ण कृत्य माना गया है। पतिविहीन स्त्री का जीवन तन्त्रीविहीन वीणा के समान निरर्थक होता था। समाज में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें कन्या स्वयं वर का चुनाव करती थी। सीता, दमयंती, द्रौपदी आदि के विवाह इसी प्रणाली के अन्तर्गत हुए थे। यज्ञ में पत्नी पति के साथ रहती थी। रामायण में उल्लिखित है कि अश्वमेध यज्ञ के समय रामचन्द्र जी को सीता की अनुपस्थिति में सोने की सीता बनानी पड़ी थी।<sup>72</sup> इस युग में नारी का सबसे अधिक पूज्य रूप माता का ही था। अन्य रूपों की तो निंदा की गई है, किन्तु नारी के माता रूप की निन्दा नहीं की गई। आदि धर्म में कहा गया है कि सभी पापों से छुटकारा मिल सकता है, किन्तु माता के पाप से छुटकारा नहीं मिल सकता।<sup>73</sup> वस्तुतः इस काल में बहुपत्नी प्रथा विद्यमान थी। महाभारत का कथन है कि राजाओं को बहुपत्नीकता से कोई अधर्म नहीं होता<sup>74</sup>। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में बहुपत्नीत्व मान्य था।

बुद्धकालीन समाज में विवाहों का स्वरूप न्यूनाधिक वही था, जो ब्रह्म, प्राजापत्य विधियों से वैवाहिक कार्य सम्पन्न किये जानेवाले आज के हिन्दू विवाह में दिखलायी पड़ता है। उन दिनों भी वर-वधू के अभिभावक अपनी संतान के विवाह सम्बन्ध निश्चित करते थे। किसी शुभ घड़ी में वैवाहिक धर्म-विधियाँ सम्पन्न की जाती थी<sup>75</sup>। निश्चित तिथि को वर पक्ष कन्यागृह पहुँचता<sup>76</sup> और विवाहोपरान्त वर अपनी वधू को यान में आसीन कराकर धूम-धाम से स्वगृह ले जाता<sup>77</sup>। विवाह की उम्र के संदर्भ में आख्यान प्राप्त होता है कि यह पूर्ण-यौवन प्राप्त युवकों तथा युवतियों के ही सम्पन्न होते थे। पालि-पिटक में षोडशी कन्या का विवाह सर्वोत्तम माना गया है। यहाँ थैरीगाथा का दृष्टांत समाचीन है, जिसके अनुसार इसिदासी का पूर्वजन्म में सोलह वर्ष की उम्र में विवाह हुआ था।<sup>78</sup> पुनः धम्मदिन्ना, कुण्डलकेशा आदि भिक्षुणियों के कुमारी अवस्था में प्रव्रज्जा ग्रहण करने के उल्लेख मिलते हैं<sup>79</sup>। ये भिक्षुणियाँ लगभग 16 वर्ष अथवा विवेकबुद्धि उदय होने का वय तक अविवाहित रही होगी, ऐसा अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा। धम्मपद टीका में उल्लेख मिलता है कि षोडषियाँ पुरुष समागमार्थ उत्कण्ठित हो जाती थीं।<sup>80</sup> मद्राजकन्या फुसति का पावन परिणय भी 16 वर्ष की उम्र में सम्पन्न हुआ था।<sup>81</sup> बौद्ध ग्रंथों में वर्णित प्रेम प्रसंगों तथा प्रेमी-प्रेमिका पलायन<sup>82</sup> की कथाओं से भी यही निर्णय किया जा सकता है कि सामान्यतः लगभग सोलह वर्ष से पूर्व कन्या का विवाह सम्पन्न नहीं किया जाता था। कन्याओं की बाल्यावस्था में विवाह का जो प्रमाण प्राप्त होता है उससे यह ध्वनित होता है कि वाह्य आक्रमणकारियों द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण माता-पिता इन आक्रांताओं से अपनी कन्याओं को बचाने के लिए बाल्यावस्था में ही विवाह करने लगे, जिससे उन्हें अध्ययन के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था। मनुस्मृति में निर्देश दिया गया है कि 30 वर्ष के पुरुष को 12 वर्ष की कुमारी से और 24 वर्ष के पुरुष को 8 वर्ष की कुमारी से विवाह करना चाहिए।<sup>83</sup> इसका परिणाम यह हुआ कि युवावस्था से पूर्व कन्या का विवाह करना अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य माना जाने लगा। अनेक स्मृतियों में वर्णित है कि कन्याओं का विवाह 'नग्निका' अवस्था में ही कर देना चाहिए।

विवाहोपरान्त नारी के पत्नी रूप की स्मृतियों में भी प्रशंसा की गई है। परिवार के सुख समृद्धि के लिए वह परिवार के प्रत्येक सदस्यों के साथ समान व्यवहार करती है। मनु के अनुसार साध्वी स्त्री दुःशील स्वच्छन्द और गुण रहित पति की भी देवता के समान व्रत सेवा करें, इसी से स्त्रियाँ स्वर्ग में सम्मान प्राप्त करती हैं, क्योंकि इनके लिए पृथक् रूप से कोई यज्ञ उपवासादिक नहीं है।<sup>84</sup> परिवार में गृहणी का महत्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि गृहणी से ही घर का निर्माण होता है। अतः स्मृतिकाल में पत्नी की स्थिति पतिव्रता नारी की थी, उसकी स्वयं की कोई इच्छा

एवं अधिकार नहीं था। वह यंत्रवत् चलती हुई परिवार में सामंजस्य स्थापित करती थी। पत्नी को पतिधर्म में बांधकर शास्त्रकारों ने जो कठोरता दिखलाई है उसका पूर्ण परिमार्जन उन्होंने उसे व्यापक अधिकार देकर किया है। व्यभिचारिणी होने तक की दशा में उसे भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार है और स्त्रीधन पर एकमात्र उसी का अधिकार होता है। मनु ने पत्नी के व्यभिचारिणी होने का दोष पति पर ही लगाया है यदि वह स्वद्वारा निरत रहे और उसकी देखभाल करें तो वह मुंश्चली क्यों हों?<sup>85</sup>

स्मृति ग्रंथों में माता की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा गया है। मनु ने संतान पालन का कार्य स्त्री के द्वारा सम्भव माना है, क्योंकि प्रकृति ने उसे यह कार्य स्वभाविक रूप से सौंपा है। यदि पिता दुराचारी और दुर्व्यवहारी रहे तो बच्चा माँ की संरक्षण में रहे।<sup>86</sup> एक पश्चात् विचारक का मत है कि "मैं विश्वास करता हूँ कि भू-मण्डल में ऐसा कोई भाग नहीं है जहाँ माता-पिता की इतनी प्रतिष्ठा की जाती हो।"<sup>87</sup> उत्तर सूत्रकाल में नारी सम्बन्धी विचारों में बड़ा अन्तर्विरोध मिलता है। नारी की स्थिति के विषय में सभी सूत्रकार एकमत नहीं हैं, फिर भी नारी के लिए कुछ सामान्य उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा की गयी। माता के रूप में उसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। आपस्तम्ब का कहना है कि पुत्र को चाहिए कि माता की सदा सेवा करें, भले ही वह जातिच्युत हो चुकी हों, क्योंकि वह उसके लिए महान कष्टों को सहन करती है। यही बात 'बोधायनधर्मसूत्र' में भी कही गयी है। वशिष्ठ के अनुसार- "पतित पिता का त्याग हो सकता है, किन्तु, पतित माता का नहीं; क्योंकि पुत्र के लिए वह कभी पतित नहीं होती।"<sup>88</sup> इस प्रकार कन्या का सबसे आदर्श रूप माँ का ही था।

बुद्ध कालीन समाज में पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन का निदर्शन वस्तुतः पालि-पिटक तथा अर्थशास्त्र से होता है। जिसके अनुसार उनका दाम्पत्य-जीवन प्रायः आदर्श एवं आनंदमय था- पारस्परिक सम्मान तथा प्रगाढ़ प्रेम से पूर्ण। परन्तु जातक कथाओं में दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक आख्यानों का लक्ष्य सम्भवतः कथा के माध्यम से भिक्षुओं को स्त्री-साहचर्य से विरक्त करना था। अतः जातक कथाओं में स्त्री को दुष्टता का अवतार बना दिया गया। इस संदर्भ में डॉ० मदन मोहन सिंह का मानना है कि बौद्ध धर्माचार्यों ने स्त्री सम्पर्क से भिक्षुओं को दूर रखने का प्रयत्न किया, क्योंकि नारी सौंदर्य की माया किसी भी समय उन्हें भिक्षु जीवन के आदर्श से च्युत कर सकती थी।

#### सन्दर्भ ग्रंथ सूची -

1. ऋग्वेद: 9.56.3; 1.27.12; 10.85; अथर्ववेद: 2.30.5
2. ऋग्वेद: 10.27.12
3. ऋग्वेद: 1.109; 8.2.2
4. ऋग्वेद: 1.109.8.2.2

5. ऋग्वेद: 6.28.5.1.27.12
6. अथर्ववेद: 5.17.12
7. ऋग्वेद: 1.115.2.1.117.7
8. शतपथ ब्रा०: 5.2.1.10
9. ऐतरेय ब्रा०: 7.13
10. अथर्ववेद: 3.3.2.3
11. ऋग्वेद: 1.85; 4.6 अथर्ववेद, 14.1.43
12. काठक संहिता: 31.1
13. ऋग्वेद: 1.109.2
14. ऋग्वेद: 10.85.42
15. ऋग्वेद: 10.85.27
16. ऋग्वेद: 10.27.12
17. ऋग्वेद: 1.112.19; 1.116.1; 1.117.20
18. ऋग्वेद: 10.39.5; 9.36.3
19. उद्धृत ओम प्रकाश: प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 281
20. ऋग्वेद: 5.2.2; 37.3
21. ऋग्वेद: 10.102.11
22. अथर्ववेद: 1.4
23. ऋग्वेद: 10.85.22; 10.85.9
24. बेनी प्रसाद: हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० 50
25. डा० के०पी० जायसवाल: हिन्दू संस्कार, पृ० 234
26. ऋग्वेद: 1.62.11; 7.71.1
27. ऋग्वेद: 1.124.7; 4.3.2; 10.71.4
28. सर्वदमन सिंह: पोलिएट्री इन एन्श्येन्ट इण्डिया, पृ० 1978
29. द वैदिक एज, पृ० 374
30. ऋग्वेद: 10.10.10 में उस आदिम युग की बात कही गई है जब बहने भाई के साथ संबंध रखती थी
31. पी०एल० भार्गव: इण्डिया इन दि वैदिक एज, पृ० 243-44
32. ऋग्वेद: 10.85.21.22
33. ऋग्वेद: 1.5713.1.116.1
34. अल्तेकर: द पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 58
35. ऋग्वेद: 1.109.2; 8.2.20
36. ऋग्वेद: 6.28.5. 10.27.12

37. ऋग्वेद: 10.35
38. ऋग्वेद: 10.85.42
39. ऋग्वेद: 10.85.46, "साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्वौ भव"
40. ऋग्वेद: 10.40.2
41. एन0के0 दत्त, द ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, पृ0 64
42. ऋग्वेद: 8.134
43. ऋग्वेद: 1.126
44. रमानाथ मिश्र: प्राचीन भारतीय समाज अर्थव्यवस्था एवं धर्म, पृ0 11
45. आर0एस0 शर्मा: प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, पृ0 91, सुवीरा जायसवाल: स्टडीज इन इण्डियन
46. सोशल हिस्ट्री ट्रेन्ड्स एण्ड प्रासपेक्टस इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, जिल्द, 6, पृ0 53-55
47. जी0एस0पी0 मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ0 65
48. ऋग्वेद: 10.25.26
49. ऋग्वेद: 10, 18.8
50. ऋग्वेद: 10.18; 7.8.10.40.2
51. ऋग्वेद: 10.85.44
52. कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया: पृ0 294, जिल्द-2
53. ऋग्वेद: 1.72.5; 5.32; 8.31
54. ऋग्वेद: 4.6.7
55. काली प्रसाद जायसवाल: हिन्दू पालिटी: पृ0 21
56. ऋग्वेद: 1.167.3
57. जी0एस0पी0 मिश्र: प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ0 107
58. पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र: जि. 2, भाग-1, पृ0 270
59. शतपथ ब्राह्मण: 5.2.1.10
60. शतपथ ब्राह्मण: 5.1.6.10
61. ऐतरेय ब्राह्मण: 12. 11
62. वृहदारण्यकोपनिषद: 4.5.12
63. तैत्तिरीय ब्राह्मण: 3.84
64. वृहदारण्यकोपनिषद 4.5; 1.2
65. अथर्ववेद: 14.1 61
66. वृहदारण्यकोपनिषद: 6.4.20 (गार्गीपुत्र)
67. छांदोग्य उपनिषद: 4.2.2

68. ऐतरेय ब्राह्मण: 7 / 13
69. मैत्रायणी संहिता: 4.6.4, काठक संहिता: 7.9
70. मैत्रायणी संहिता: 3.6.3, तैत्तिरीय संहिता: 6.5.8.2
71. शतपथ ब्राह्मण:
72. ऐतरेय ब्राह्मण: 3.24.7
73. रामायण: 8.91.5
74. आदिपर्व: 37 / 4
75. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र: भाग-2 पृ0 552, "न चाप्यधर्मः कल्याणि बहुपत्नीकता नृणां।"
76. दीघनिकाय: 1 पृ0 4, पृ0 11; जातक: 1 पृ0 258
77. जातक: 1. पृ0 258
78. कुणाल-जातक: 536
79. थोरीगाथा: 445
80. धोरीगाथा: 12, 46 तथा धेरीगाथा- अट्टकथा
81. धम्मपद अट्टकथा: 120- "राजगहे तु एका सेट्ठिधीता सोलस्सवस्सुदेसिका अभिरूपा अहोसि दस्यनाय। तस्मिं च वये धिता नारियो पुरुसझासाय होंति पुरुषलोला।।"
82. जातक: 4, पृ0 484
83. धेरीगाथा: 47-पटाचारा अपने भृत्य के साथ पलायन कर गयी थी
84. वही, मनुस्मृकति: 2 / 66
85. एम0 पिनरवम: विमेन इन द सेकेण्ड स्क्रिपचर्स, पृ0 87
86. याज्ञो: 1.78-91, मनु, 4 / 133-34, 8 / 317
87. मनु0: 9 / 27
88. बोधायन: रेम्बिल्स एण्ड रिफ्लेक्शंस ऑव इन इण्डिया ऑफिसिमल वशिष्ठ धर्मसूत्र: 14 / 2.4



